शंकर भांडारी

मैं कुँवारा ही क्यों रहा !

मैं अभी तक कुँवारा क्यों रहा? इस प्रश्न का उत्तर जितना आसान लगता है, उतना है नहीं।

मैं आज तक कुँवारा रहा या रह गया, यह बताना भी ज़रा मुश्किल है। लेकिन विनोद से मैं कभी-कभी कहता हूँ — ''मेरी पत्नी की शादी अभी तक नहीं हुई है।'' इस बात पर आप कहेंगे अरे! इस बुड्ढे को अब भी शादी की उम्मीद है! तो दरअसल हो भी तो इस में क्या आश्चर्य? विधाता ने सृष्टि के निर्माण से ही पुरुष-स्त्री, आदमी-औरत और लड़का-लड़की आदि की कुछ ऐसी व्यवस्था की है। ठीक है! सृष्टि के नियम को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए यह व्यवस्था उचित भी है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि कोई इस व्यवस्था के विरोध में है। पर, यहाँ तो प्रश्न विवाह संस्था का है। यौवन आने के बाद लड़के-लड़की को इस संस्था में अपने आप को उलझा कर अटल कर्मों को हमेशा ही करते रहना है क्या?

सुप्रसिद्ध लेखक बेकन अपने ''विवाह और एकांत जीवन'' शीर्षक निबंध में लिखता है — ''जिस ने पत्नी और बच्चे किए हैं वह स्वयं अपनी क़िस्मत के लिए उत्तरदायी है।'' क्योंकि इन दोनों प्रसंगों का अर्थ यही है कि वे जो कुछ ज़िन्दगी में करना चाहते हैं कर नहीं पाते। बर्टन अपने अकेलेपन का विश्लेषण करते हुए कहता है कि ''विवाह की फाँसी पर चढ़ना आदमी के नसीब में लिखा ही है।'' यह सुन कर मुझे प्रसन्नता हुई कि मैं इस बंधन से मुक्त रहा। दरअसल मैं कुँवारा रह गया ऐसा कहना उचित नहीं होगा। इस संबंध में मैं आप से झूठ तो बोल सकता हूँ लेकिन अपने आप को धोखा नहीं दे सकता। मेरा जन्म ब्राह्मण कुल के संयुक्त परिवार के ऐसे गाँव में हुआ जहाँ यज्ञोपवीत उत्सव के बाद विवाह, तदुपरांत गर्भाधान, और उस के पश्चात् और कुछ... ये सब संगीत में स्वर की भाँति आते हैं। हरिदास का कीर्तन समाप्त होने के बाद देवताओं को नैवेद्य दिखाया जाता है, उस के साथ ही प्रसाद का दोना हाथ में आ जाता है, उसी तरह! पर मेरे पास पहुँचते समय यह तीर चूक गया या मैं ने स्वयं उसे नज़रंदाज़ कर दिया?

मेरे घर में पूर्वजों की दुकान थी। उस के बाहर खेत एवं नारियल के पेड़ों का बगीचा था। कितने भी मेहमान आएँ, उन को चावल का माड़ खिलाने में दिक़्क़त नहीं थी। दूसरे विश्वयुद्ध के समय भी मैं ने बिना माप के चीनी खाई और मिट्टी का तेल जलाया है! उस समय इस प्रकार का भाग्य केवल पोर्तुगीज़ अधिकारियों को ही हासिल होता था। कहने का मतलब यह है कि गोवा में किसी भी अपनी जाति की जवान हुई लड़की के बाप की नज़र मुझ जैसे मैट्रिक पास हुए लड़के पर पड़ती तो इस में आश्चर्य क्या? (उस समय की मैट्रिक! और वह भी आख़िरी! उस के बाद एम.एस.सी.ई. और एंट्रेस!)

लेकिन हमारे बंधुओं के मन में मेरे संबंध में कुछ और अपेक्षाएँ थीं। उन सभी लोगों की शिक्षा पोर्तुगी . में हुई थी। वे सभी सच पूछो तो सरकारी नौकर होने वाले थे, परंतु पोर्तुगीज़

काल में सरकारी नौकर की पगार... घर में चार नारियल फोड़ने वाले से भी कम थी। इसलिए उन्होंने अपनी दुकान ही सँभाली और अपने व्यापार को हिसाब से ज़्यादा बढ़ाया। (मैं ने हिसाब से बाहर इसलिए कहा कि उन्होंने कभी हिसाब लिखा ही नहीं।) इसलिए उन की बुद्धि में यह विचार आया कि अपने बुद्धिमान बंधुओं को परदेस भेज कर व्यापार-विषयक शिक्षा में निपुण होने का मौक़ा देना चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार मुझे मुंबई के पोद्दार कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स में भेज दिया गया। सही में मेरा जन्म दुकानदार के घर में हुआ था लेकिन मेरी प्रकृति दुकानदार की नहीं थी। आख़िरकार मेरी कॉलेज की शिक्षा निरर्थक हो गई। अब तो ज़्यादातर लड़कियाँ कॉमर्स के लिए जाती हैं। तब पारसी को छोड़ और कोई नहीं जाती थीं। हम सात-आठ छात्र गोवावासी थे। जैसे रेगिस्तान में पानी का एक छोटा-सा तालाब दिखाई दे, वैसे ही हमारी नज़र में एक ख़ूबसूरत लड़की दिखी जिस का नाँव-गाँव पता करने के लिए हम लोगों के बीच प्रतियोगिता शुरू हुई। मैं ने इस चुनौती को स्वीकार कर सभी गोवावाले दोस्तों को एक मधुर आकस्मिक धक्का दिया। उसी दिन शाम को कॉलेज के समीप वाले होटल में हम लोगों ने मसाला-डोसा खाया। वह लड़की मंगलौरियन, देखने में ख़ूबसूरत, एवं प्रथम प्रयास द्वारा सहज प्राप्त होने वाली लगती थी। लेकिन जब उस ने अपने घर की कहानी सुनाई कि उस के पिता ने एक जवान लड़की के साथ दूसरी शादी कर ली है तो उस को पिता के चंगुल से छुड़ाने के उद्योग में ही मेरे कॉमर्स का प्रथम वर्ष समाप्त हो गया। अब उस घटना की याद दिलाने पर वह बेचारी अभिभूत हो जाती है। और मुझे अकेले रहने के प्रति आत्मसंतोष की अनुभूति होती है।

पहली ही बार मैं अपनी हिम्मत के कारण जीत गया, इस का कारण यह है कि डॉन जुआन नाटक में बायरन ने क्या कहा था यह मुझे अच्छी तरह याद था — ''टॉक सिक्स टाइम्स विद द सेम सिंगल लेडी, ऐंड यू मे गेट द वेडिंग ड्रेसेज़ रेडी।'' इस का मतलब यह है कि एक लड़की से लगातार छह बार बात करके तुम शादी का सूट सिलवाने के लिए दे सकते हो! यह हुई एक बात। दूसरी बात मैं ने पहले ही कही है कि मैं संयुक्त परिवार में बड़ा हुआ और मेरे यहाँ सगे-संबंधियों का आना-जाना लगा रहता था। हमारे संबंधी की कुछ लड़कियाँ मराठीशाला सीखने के कारण हमारे यहाँ ही रहती थीं। इसीलिए जवान लड़कियों को देखने के लिए मेरी नज़र भूखी नहीं थी। लड़कियों को भी मेरी नज़र में जो पारदर्शिता चाहिए थी वह दिखाई दे रही थी। कॉलेज का खोबरा होने के बाद मैं ने तरह-तरह की नौकरियाँ पकड़ीं। जिस सहजता से मुझे मुंबई में नौकरियाँ मिलती गईं, उसी सहजता से मैं उन्हें छोड़ता भी गया। या जब भी मेरा दिल गोवा आने को चाहता तब मैं तुरंत नौकरी छोड़ कर आ जाता, और एक-दो महीने इधर-उधर रहने के बाद जब मैं वापस मुंबई जाता तब दूसरी नौकरी स्वयं मेरे लिए मेरा इंतज़ार करती मिलती थी। आज जब मैं यह कहता हूँ तो पल भर के लिए आप को अतिशयोक्ति लगने की संभावना हो सकती है। 1948 से 1961 के बीच मैं ने कम-से-कम छह-सात नौकरियाँ कीं और कार्यालय के काम से अधिक संसार के इतर धंधों में रुचि लेता रहा। इस के उपरांत कोंकणी भाषा, गोवा की स्वतंत्रता और इस क्षेत्र में कार्य करने वाले गोवा वालों की मित्रता में मेरा वक़्त कैसे गुज़र जाता था यह मेरी समझ में ही नहीं आता था। मैं

नियमित कॉलेज नहीं जाता था फिर भी भारतीय विद्यापीठों में एक्सटर्नल डिग्री के संबंध में सभी जानकारियाँ प्राप्त कर ली थीं। यही कारण है कि मैं ने इंटर आर्ट की परीक्षा वाराणसी और बी.ए. की परीक्षा पूना में दी। इस दौरान ऑलियांस फ्रांसे एवं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के छोटे-मोटे कोर्स भी कर डाले। इस के अतिरिक्त रवीन्द्र संगीत का अभ्यास करते हुए मैं ने पत्रकारिता के कोर्स में भी प्रवेश लेने में संकोच नहीं किया। इसे करने में मैं ने आगा-पीछा कुछ नहीं देखा। इन सब बातों में मेरी ख़ूब जिज्ञासा रहती थी। मैं प्रातःकाल मेमोरियल हॉल में जे. कृष्णामूर्ति से अपने कौतूहल के समाधान के लिए तथा सायंकाल वी.के. कृष्ण मेनन गोवा पर क्या बोलते हैं, यह सुनने के लिए सुंदरबाय हॉल में चला जाता था। ये सब बातें बताने का प्रयोजन इतना ही है कि इस दौरान मेरे क़रीब पता नहीं कितनी लड़कियाँ और औरतें आईं, इस का कोई हिसाब नहीं। मेरी क़िस्मत ही ऐसी है कि मुंबई पोर्ट ट्रस्ट में प्रत्येक दिन लगभग 150 लड़कियाँ मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगाती थीं और मैं उन के सुख-दुख में भागीदार भी होता था। यह सब देख कर मेरे रूममेट्स मुझ से ईर्ष्या करते थे। उन सभी की आज शादी हो गई है और वे अपने-अपने बच्चों की शादी की तैयारी भी करने लगे हैं। अब भी वे मुझ से जलते हैं, लेकिन मैं उन से प्रेम करता हूँ। जब उन में से कोई हर दिन शिकायत करता है तब मुझे चर्चिल के इस वाक्य की याद आती है — ''मैन ऐंड वाइफ़ कपल टुगेदर फ़ॉर द सेक ऑफ़ स्ट्राइफ़'' — मर्द-औरत सिर्फ़ झगड़ा करने के लिए इकट्ठा होते हैं।

किसी भी परिस्थिति के कारण जो लड़कियाँ कुँवारी रहती हैं, उन की दशा कैसी होती है, इस की कल्पना मैं नहीं कर सकता। इसीलिए मेरी कुँवारी बहनें, मेरे भाइयों की लड़कियाँ, मेरे संबंधियों की लड़कियाँ और संबंध के बाहर की लड़कियों की शादी कराने का मैं ने भरपूर प्रयत्न किया। ये प्रयास आमतौर पर यशस्वी हुए हैं, लेकिन कुछ के लिए मुझे दोषभागी भी बनना पड़ा। लेकिन इन सब बातों से मेरा यह एक मत पक्का हो गया है कि ''वुमन शुड मैरी बट नॉट ए मैन'' — शादी औरत को करनी चाहिए न कि मर्द को। आदमी को कुँवारा रहना चाहिए, और इस मेरे मत को बेंजामिन डिज़रैली ने पुष्ट किया है। एक स्पेनिश लेखक इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहता है कि ''औरत को अपने से अधिक कुशाग्रबुद्धि की ज़रूरत होती है, और कुछ प्रसंगों में सलाह लेने के लिए उस को एक और मस्तिष्क की ज़रूरत होती है। मर्द की बात और है। शादी की इतनी छोटी-सी अँगूठी में कितने कष्ट हैं, इस की समझ शादी के बाद ही आती है।'' तब ''ओल्ड बैचलर'' में विलियम कांग्रीव क्या कहता है, उस की याद आती है : ''जल्दी में शादी कीजिए और आराम से पश्चात्ताप कीजिए।'' ये सब सच होने के बाद भी आप मुझ से यह प्रश्न पूछेंगे कि इतनी सारी लड़कियों से परिचय होने के बाद भी आप प्रेमजाल में क्यों नहीं फँसे? मैं आप के इस सवाल का जवाब देता हूँ कि मैं फँसा नहीं ऐसा नहीं कह सकता। प्रेम किया लेकिन उस में डूबा नहीं। मैं मुंबई की जिस चाल में रहता था वहाँ सब तरह के लफड़े चलते रहते थे। मेरे माले पर विभिन्न परिवार के लोग रहते थे लेकिन उन में सभी लोग एक ही लड़की का ज़िक्र करते थे। वह लड़की एक समाचार-पत्र में काम करती थी और पढ़ने में रुचि रखती थी। उस को वश में करने के लिए मेरा एक रूममेट बिना किसी कारण के एक वाचनालय का सदस्य बन गया और अपनी बहन के माध्यम से उस को किताबें

भेजने लगा। लेकिन इस का परिणाम विपरीत ही हुआ। उस मित्र को पुस्तक देने के बजाय वह मुझे मेरे कमरे में अकेला देख कर पुस्तक वापस करने के लिए मेरे पास आने लगी। इस तरह दिन-प्रतिदिन परिचय बढ़ता गया और यह बात उस के माता-पिता को ज्ञात हो गई पर उन्होंने आँखें मूँद लीं। हम दोनों प्रत्येक दिन मलाबार हिल, चौपाटी और कभी-कभी उन के परिवार के साथ सिनेमा भी देखने जाने लगे। प्रेमोत्तर शोडषोपचार होने लगे। उसी वर्ष मेरे जीवन में गांधी, विनोबा, काकासाहेब और दादा धर्माधिकारी आदि जैसे पवित्र विचारक आए। परिणाम-स्वरूप मैं ने आदर्श प्रेम की बात की, लेकिन उस को और उस के माता-पिता को व्यवहार चाहिए था। उन के सुयोग से उन के ही पड़ोस की वाड़ी में एक लड़का मिल गया जो कि कलकत्ता में अधिकारी था। माता-पिता ने उचित ढंग से विवाह का प्रस्ताव रखा। दूल्हे ने उसे स्वीकार किया। उस लड़की ने सोचा कि शायद मुझे बुरा लगेगा, इसलिए वह अनुमति लेने के लिए मेरे पास आई तो मैं ने सहर्ष हाँ की। इतना ही नहीं, बल्कि मैं ने उस की शादी में उसे एक अच्छा उपहार भी भेंट किया और स्वयं उपस्थित भी हुआ। अब भी हमारे बीच स्नेह उसी तरह है। मैं अभी तक कलकत्ता नहीं गया, लेकिन जब भी वे इधर आते हैं, वे दोनों हमारे यहाँ ठहरते हैं।

निष्कर्ष : विवाह संस्था एक ऐसी संस्था है जिस में जो भीतर है वह बाहर, और जो बाहर है वह भीतर आना चाहता है। मुझे इस का पूरा अनुभव है। इसलिए मैं उस की चौखट पर ही रहा।